UGC CARE List (Arts and Humanities) Sr. No.-326 ISSN : 2347-9892

शोधप्रज्ञा

अर्द्धवार्षिकी मूल्याङ्कित शोधपत्रिका

Biannual Refereed Research Journal

(UGC Approved)

वर्षम्-अष्टमम् अङ्कः-द्वितीयः जूनमासः २०२१

प्रधानसम्पादकः

प्रो० देवीप्रसादत्रिपाठी

कुलपतिः

उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयः

हरिद्वारम उत्तराखण्डम

लोक एवं शास्त्रों में विवाह संस्कार के निष्पादन की प्रक्रिया का एक तुलनात्मक अध्ययन :– गढ़वाल हिमालय के सन्दर्भ में

प्रो0 डी.पी.सकलानी,

डॉ0 सम्पत्ति नेगी (corresponding author)

इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि.,

श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड़, 246174

शोध सार– गढ़वाल हिमालय का लोकजीवन प्राचीन काल से ही भारतीय धर्म भावना में परम पुनीत क्षेत्र रहा है। यहाँ के निवासियों के धार्मिक और सामाजिक विश्वास समस्त हिन्दू जाति के परम्परागत विश्वासों से भिन्न नहीं रहें हैं। किन्तु स्वयं हिन्दू धर्म में न जाने समय–समय पर कितने अनार्य और आर्य जातियों की परम्पराएं समाहित होती रहीं। इसीलिए गढ़वाल हिमालय की मूल धार्मिक भावना का उत्स ढूँढ निकालना कठिन है। अतः शास्त्रों और धार्मिक ग्रंथों में प्रतिपादित धर्म के अतिरिक्त भी यहां के लोक जीवन में सदा से एक पृथक धर्म का अस्तित्व चला आ रहा है, जिसे सामान्यतः लोकधर्म की संज्ञा दी जा सकती है। अतः लोकजीवन में शास्त्र–सम्मत धर्म और लोक धर्म दोनों की परम्पराएं समान रूप से अपना अस्तित्व बनाए हुए मिलती हैं। साथ ही इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता है कि सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से यहाँ के लोकजीवन में वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय पद्धति का अनुसरण किया जाता रहा है। इसी मिश्रित पद्धति का स्वरूप लोकजीवन में निष्पादित होने वाली विवाह पद्धति एवं विधि–विधानों में देखा जा सकता है। अतः इस शोधपत्र के माध्यम से लोकजीवन में विवाह संस्कार की निष्पादन प्रक्रिया का वेद एवं शास्त्रों में उल्लिखित विवाह प्रक्रिया के साथ एक तुलनात्मक अध्ययन निरूपित करने का प्रयास किया जा रहा है।

मुख्य शब्द– विवाह, गान्धर्व विवाह, कन्यामूल्य, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति।

विवाह संस्कार का तुलनात्मक अध्ययन– स्मृति एवं शास्त्रों में सोलह मानक हिन्दू संस्कारों में विवाह को धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक रूप से सर्वश्रेष्ठ एवं पवित्र माना गया है। विधिवत् वेद–मन्त्रों के उच्चारण के साथ तथा यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा के बाद सम्पन्न किए गए विवाह का विच्छेद स्मृति एवं शास्त्रों में असम्भव बताया गया है। ऋग्वेद के विवाहसूक्त में सर्वप्रथम विवाह की अवधारणा मिलती है। इसमें पति–पत्नी को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि तुम दोनों वृद्धावस्था तक अर्थात् जीवनपर्यन्त एक साथ रहो।[1] अतः विवाह संस्कार गृहस्थ जीवन की दुनिया का वह प्रवेश–द्वार है जहां से गुजरने के बाद व्यक्ति पर जिम्मेदारियों का निर्वाह करने का दायित्व सम्पूर्णता से आ जाता है। हिन्दू समाज में पारिवारिक वशं वृद्धि के मूल में स्त्री एवं पुरूष के मिलन की परम्परा रही है जिसके लिए विवाह संस्कार को आवश्यक बताया गया है। विवाह संस्कार जाति अथवा कुल को आगे बढ़ाने वाला एक महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है। साथ ही स्मृति एवं शास्त्रों में गृहस्थी का यह महत्वपूर्ण कर्त्तव्य समझा गया है कि स्त्री और पुरूष विवाह बंधन में बंधकर बच्चे पैदा करके अपने पितृ–ऋण को चुकाए। इस प्रकार की मान्यता गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में भी दिखाई देती है जिसमें पितृ ऋण से उऋण होने के लिए परिवार में बालक का जन्म होना अति महत्वपूर्ण माना गया है। लोकमान्यतानुसार सिर्फ पुत्र ही पिता को पितृ–ऋण से उऋण कर सकता है व अपने पूर्वजों का तर्पण कर सकता है। इसीलिए लोकजीवन में विवाह का धार्मिक, सामाजिक व पारिवारिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व माना गया है। लोकमान्यतानुसार परिवार तभी अस्तित्व में आता है जब एक स्त्री और एक पुरूष का एक–दूसरे से विवाह सम्पन्न होता हैं। वास्तव में लोकजीवन में सामान्यतः पति–पत्नी का पौराणिक और शास्त्रीय स्वरूप देखने को मिलता है। स्कन्द व तैत्तिरीय ब्राह्मण में विवाह के इसी स्वरूप को स्वीकारा गया है।[2]

पुराण एवं शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाहों की चर्चा की गई है एवं गढ़वाल क्षेत्र में प्रचलित विवाह प्रकारों के सन्दर्भ में पुराणों में प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, पैशाच इत्यादि जैसे विवाह प्रकारों का उल्लेख किया गया है। अनेक सन्दर्भ ग्रन्थों एवं प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि गढ़वाल हिमालय में निवास करने वाली जातियों में पुराण एवं शास्त्रों में वर्णित इन विभिन्न विवाह पद्धतियों के माध्यम से विवाह सम्पन्न होते थे। जैसे– शिव–पार्वती का विवाह प्राजापत्य विवाह प्रकार से सम्पन्न हुआ था। इस विवाह हेतु स्वयं ब्रह्म हिमालय के घर पर शिव के लिए पार्वती का हाथ मांगने गए थे।[3] हिमालय ने गर्ग ऋषि से जन्मकुण्डली बनवाकर इसकी टीका शिव के पास भेजी थी। शिव जन्म पत्रिका मिलान, टीका स्वीकृति व वैवाहिक मंगल स्नान के बाद ही बारात लेकर आए थे।[4] पार्वती के विवाह के लिए पार्वती के पिता हिमालय ने विवाह हेतु यज्ञवेदी तथा आभूषण देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित करवाए थे।[5] स्वयं ऋषभदेव महाराज ने गुरूदक्षिणा देकर इन्द्रकन्या जयन्ती से विवाह किया था, जो आर्ष विवाह का एक उदाहरण है। केदारखण्ड क्षेत्र में कण्वाश्रम (कण्व ऋषि के आश्रम) में दुष्यन्त ने विश्वामित्र व मेनका की पुत्री शकुन्तला से गान्धर्व विवाह किया था।[6] इस प्रकार के विवाह प्रकार का प्रचलन मुख्यतः गन्धर्व जाति में दिखाई देता है। अर्जुन ने नागराज कौरव्य की पुत्री उलूपी से गंगाद्वार अथवा हरिद्वार में एवं मनुवंशी मान्धाता ने भी मानसरोवर यात्रा के समय पृथ्वी से गान्धर्व विवाह किया था।[7] बाणासुर की कन्या उषा का भी कृष्ण के पौत्र अनिरूद्ध से गान्धर्व प्रकार से विवाह हुआ था।[8]

गढ़वाल क्षेत्र की खश और किन्नर जातियों में कन्या विक्रय द्वारा विवाह किए जाने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं, जो लोकजीवन में टका के विवाह की परम्परा के रूप में प्रचलित था। विक्रय अथवा टका के विवाह को शास्त्रों में आसुर विवाह की श्रेणी में रखा गया है, क्योंकि विवाह के इस प्रकार में वर पक्ष द्वारा कन्या पक्ष को विवाह के लिए शुल्क दिया जाता था।[9] यूनानी लेखकों के अनुसार उत्तर–पश्चिम भारत में कन्याशुल्क लेने की प्रथा प्रचलित थी।[10] इस प्रकार के विवाह सम्बन्ध प्रमुखतः खश जाति में प्रचलित थे। शिवप्रसाद डबराल इंगित करते हैं कि सुन्दर कन्या **'सहस्त्रेण वर्या'** अर्थात् चांदी के एक सहस्त्र कार्षापण तक देकर खरीदी जाती थी जो 'बांद' कहलाती थी।[11] डी. डी. शर्मा लिखते हैं कि खश समाज में वधूमूल्य देकर पत्नी प्राप्त करने की सर्वसामान्य परम्परा थी, जिसे आर्य स्मृतिकारों ने आसुर विवाह नाम दिया है।[12] रतूड़ी इंगित करते हैं कि खशों के मध्य सैकड़ों रूपया कन्या–शुल्क देकर विवाह होते थे और संकल्प, पाणिग्रहण, सप्तपदी आदि रीति काम में नही लाई जाती थी। कुछ लोग सप्तपदी एवं अन्य वैवाहिक विधि–विधान उस समय करते थे, जब कन्या वर के घर लाई जाती थी।[13] इस प्रकार के विवाह में दुल्हन के घर दूल्हा स्वयं नही जाता था अपितु बारात को भेजता था व कन्या को बिना किसी वैवाहिक अनुष्ठान के वरपक्ष के घर ले आया जाता था तथा सभी वैवाहिक अनुष्ठान जिसमें अंचल रस्म के रूप में विवाह को पूर्ण माना जाता था, इन वैवाहिक रस्मों को पति के घर पर सम्पन्न किया जाता था, जिसका लक्ष्य पत्नी को सामाजिक और आनुष्ठानिक उद्देश्य से पवित्र करना था। यदि अंचल से पहले और गणेश पूजा व दुल्हन द्वारा गहने पहनने की रस्म पूरी होने के बाद पति की मृत्यु हो जाती थी तो महिला विधवा मानी जाती थी।[14] गर्दा लरनर कन्यामूल्य प्रथा की प्राचीनता के संबंध में लिखती हैं कि ईसा के दो हजार साल पूर्व से ही, मैसोपोटामिया में भी कन्या के विवाह के अवसर पर वर पक्ष से वधू पक्ष द्वारा कन्यामूल्य लिया जाता था।[15] गढ़वाल में प्रचलित टके के विवाह के मूल में समाज में नारियों की कमी, कुछ पुरूषों का एक से अधिक पत्नी रखना, कृषि–पशुचारण के लिए नारी का अनिवार्य महत्व तथा प्राचीन परम्परा इत्यादि कारण रहे हैं।[16] यद्यपि क्रय के कुछ उदाहरण वैदिक कालीन साहित्य से भी प्राप्त होते हैं, परन्तु क्रय विवाह को धार्मिक ग्रन्थों में अनुचित मानते हुए कहा गया है कि जो कन्या धन देकर प्राप्त की जाती है वह वैध पत्नी की अपेक्षा दासी कहलाने की अधिकारिणी है। जो पिता कन्या को बेचता है वह अपने पुण्य बेचता है।

प्राचीन गढ़वाल में निवास करने वाली पैशाच जाति जिसे आर्यों द्वारा अनार्य की संज्ञा दी गई, इनके मध्य पैशाच प्रकार के विवाह का प्रचलन था। मनुस्मृति (3.34) के अनुसार यह लोग सुप्त, अर्धचेतन अवस्था में पड़ी अविवाहित कन्याओं को एकान्त में पाकर उनके साथ बलात्कार करके उन्हें पत्नीत्व स्वीकार करने पर विवश करते थे।[17] इनकी अशुचि प्रकृति एवं क्रूर एवं असभ्य चेष्टाओं के कारण आर्यावर्त के लोग इनसे घृणा करते थे तथा उनकी अनार्य संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था विरोधी प्रवृत्तियों के कारण उनसे द्वेष रखते थे। यह लोग न तो आर्यों की श्रौत परम्पराओं को मानते थे और न यज्ञ व श्राद्ध आदि में ही विश्वास रखते थे।

गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में महिलाओं के लिए विवाह संस्कार को आवश्यक मान इसे उनके उपनयन संस्कार की संज्ञा दी गयी। सामान्यतः विवाह की कोई आयु सीमा निश्चित न होने के कारण लोकजीवन में बाल विवाह का व्यापक प्रचलन रहा।[19] लोकजीवन में विवाह तय करने के अपने सामाजिक मान्यताओं पर आधारित विधि–विधान रहें। जिसके अन्तर्गत जाति–समुदाय, सामाजिक स्तर, वर्ण, वर–कन्या के गुण व वर–कन्या की कुण्डली का मिलान इत्यादि कार्यों को आवश्यक माना गया है। शिवप्रसाद डबराल इंगित करते हैं कि ब्रिटिशकालीन गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में अपनी जाति शुद्धता बनाए रखने के लिए ही उच्च जाति के लोगों एवं वयस्कों द्वारा व्यक्ति की योग्यता की जगह उसकी पारिवारिक, जातिगत एवं उपजातिगत स्थिति पर अधिक ध्यान दिया जाता था। इन्हीं नियमों के अनुसार विवाह केवल अपने वर्ण में ही हो सकता था। अपने से निम्न वर्ण की नारी रखने पर खशताल या डुमताल लगने के कारण व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। अपनी उपजाति, अपनी माता, दादी और नानी की उपजाति में विवाह नही हो सकता था।[20]

इस तरह के सामाजिक नियम प्रायः स्मृति एवं धर्मशास्त्रों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। स्मृति एवं धर्मशास्त्रकारों ने भी सपिण्ड, सप्रवर, सगोत्र विवाहों को वर्जित माना है। प्राचीन भारतीय समाज में विवाह तय करते समय वर–वधू के सामाजिक वर्ग तथा वंश का विशेष ध्यान रखा जाता था। इनमें पिण्ड, प्रवर व गोत्र प्रमुख थे। प्राचीन स्मृति एवं धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि समाज में सपिण्ड, सगोत्र व सप्रवर कन्या से विवाह न करने के नियम अनिवार्य थे एवं ऐसे विवाह वैध नहीं माने जाते थे। सभी स्मृतियां एवं धर्मशास्त्र सगोत्रता और समान प्रवरता दोनों ही विवाह संबंधों को वर्जित मानते है एवं वधू का गोत्र तथा प्रवर दोनो ही भिन्न होना आवश्यक मानते है। इन शास्त्रों के अनुसार वधू का यदि गोत्र भिन्न है और प्रवर समान है तो विवाह नही हो सकता। इसी प्रकार यदि प्रवर भिन्न है और गोत्र समान है तब भी विवाह सम्भव नहीं हो सकता था।[21] इन प्रतिबंधों का यह उद्देश्य था कि अति निकट संबंधियों से वैवाहिक संबंध न हों। माता–पिता की संतान के साथ या भाई बहन के अवांछनीय वैवाहिक संबंध का भय ही सम्भवतः इन प्रतिबन्धों का मूल कारण था। एक ओर बहिर्विवाह–व्यवस्था से हिन्दू समाज को प्रगतिशील और स्वस्थ विचार प्राप्त हुए जिससे समाजिक और धार्मिक विशुद्धता और एकता का विकास हुआ। वहीं दूसरी ओर जैविकीय और रक्तीय दृष्टिकोण से बहिर्विवाह एक उदात्त और उत्तम व्यवस्था मानी जा सकती है जिससे स्वस्थ, सुन्दर और बुद्धिमान सन्तान की प्राप्ति होती थी। आज अनेक जीवशास्त्रीयों ने इस व्यवस्था की सराहना की है तथा मत व्यक्त किया है कि निकट संबंधियों के बीच विवाह करने से संतानों में शारीरिक दोष आ जाते हैं जिनसे उनका स्वाभाविक विकास अवगत हो जाता है।[22]

इसके अतिरिक्त गढ़वाल में प्रचलित जातिगत एवं उपजातिगत स्थिति के कारण समाज में अनुलोम[23] व प्रतिलोम[24] विवाहों पर भी पूर्णतः प्रतिबंध रहा है।[25] प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों जैसे– स्मृति, गृह्यसूत्र व धर्मसूत्रों में भी अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों को समाजसम्मत न मानकर प्रतिबंधित किया गया है। मनु एवं याज्ञवल्क्य ने चारों वर्णों के पुरूषों का सवर्णा नारी के साथ विवाह करना प्रशंसनीय माना है। मनु गुणवान सवर्णा कन्या को उद्वाह कर्म (जिसके साथ धार्मिक एवं सामाजिक कर्मकाण्डों का सम्पादन किया जा सके) योग्य मानते है, व अन्तर्जातीय विवाहों को

कामसम्भव मानते हैं, तथा आगे चलकर वर्णसंकरता के काल्पनिक सिद्धान्त का विकास करते है, जिसमें अन्तर्जातीय विवाह से उत्पन्न संतान को निम्न स्थान दिया गया है।[26] याज्ञवल्क्य ने कन्या के लिए गुणवान् सवर्ण वर उपर्युक्त माना है,[27] एवं वेदव्यास ने भी सवर्णा पत्नी को ही धर्मानुष्ठानों का अधिकार प्रदान किया है।[28] इसके अतिरिक्त वैश्यों और शूद्रों में विवाह–सम्बन्ध के विषय में केवल वर्ण–भेद का ही नहीं, उपजाति–भेद का भी पालन किया जाता था। यद्यपि धर्मसूत्र तथा परवर्ती स्मृतियां सभी निम्न वर्ण की कन्या से विवाह की अनुमति देते हैं, किन्तु ऐसे विवाह आदर की दृष्टि से नही देखे जाते थे।[29]

वैदिक नियमों के अनुरूप ही तत्कालीन गढ़वाल हिमालय की सबसे उच्च ब्राह्मण जाति के रूप में प्रतिष्ठित सरोला वर्गीय ब्राह्मणों के द्वारा 20वीं शदी में **'सरोला सभा'**[30] की स्थापना की गई, जिसके अनुसार सरोला वर्गीय ब्राह्मणों के लिये सरोला वर्गीय ब्राह्मणों से ही वैवाहिक संबंधों को आवश्यक माना गया। अन्यथा यदि कोई सरोला वर्गीय पुरूष अपने से निम्न उपवर्ग–गंगाडी वर्गीय कन्या से विवाह करता तो उसकी संतान गंगाडी कहलाती थी।[31] इसके अतिरिक्त कोई भी महिला अपने से निम्न जाति के पुरूष के साथ विवाह नही कर सकती थी। इस नियम का उल्लंघन करने की स्थिति में महिलाओं को कड़ी सजा यथा– जाति व समाज से बाहर व मृत्युदण्ड देने तक का प्रावधान था। उच्चवर्णीय पुरूषों को अपने से निम्न वर्ण की स्त्रियों के साथ विवाह की अनुमति थी किन्तु इसे सामाजिक रूप से सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखा जाता था।[32] इसके अतिरिक्त तत्कालीन गढ़वाल हिमालय के खश ब्राह्मण व राजपूत दोनों वर्गों में संस्कारहीन अनौपचारिक विवाह के रूप में प्रतिलोम विवाह की परम्परा विद्यमान रही,[33] जिसमें किसी निम्नवर्गीय ब्राह्मण या क्षत्रिय व्यक्ति को कन्या शुल्क देकर उसकी कन्या को औपचारिक रूप से वर के घर ले आकर विवाह सम्पन्न माना जाता था। अतः गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में विवाह संस्कार अनेक नियमों और उद्देश्यों का समिश्रण बनकर सामने आता है। जिसमें स्मृति एवं शास्त्रों की परम्पराओं का पूर्ण अनुपालन दिखाई देता है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद : 10.85.42., इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
   भट्ट, राम प्रसाद. एवं हरिमोहन. द्वारा उद्धृत, टिहरी बांध के डूब क्षेत्र के लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, श्रीनगर गढवाल पुस्तकालय, 2005, पृ0 203.
2. स्कन्दपुराण : 1.11.22.38, तैत्तिरीयब्राह्मण : 2.9.4.7, अथौ अर्द्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी।
   भट्ट, राम प्रसाद. एवं हरिमोहन. द्वारा उद्धृत, पूर्वोक्त, पृ. 203.
3. नौटियाल, राकेश मोहन., पौराणिक उत्तराखण्ड की सामाजिक व्यवस्था, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून, 2011, पृ0 77.
4. मानसखण्डम् : 6.50., नौटियाल, राकेश मोहन. द्वारा उद्धृत्, पूर्वोक्त, पृ0 77.
5. शिवपुराण, रूद्रसंहिता, पार्वती खण्ड : 47.27–37, मत्स्य पुराण : 154.452., नौटियाल, राकेश मोहन. द्वारा उद्धृत्, पूर्वोक्त, पृ0 77.
6. वामनपुराण : 27.33., नौटियाल, राकेश मोहन. द्वारा उद्धृत्, पूर्वोक्त, पृ0 78.
   श्रीमद्भागवत : 5.4.8., नौटियाल, राकेश मोहन. द्वारा उद्धृत्, पूर्वोक्त, पृ0 76.
7. श्रीमद्भागवत : 9.20.3–7, महाभारत, आदिपर्व : 73.17., नौटियाल, राकेश मोहन. द्वारा उद्धृत्, पूर्वोक्त, पृ0 76.
8. महाभारत, आदिपर्व : 216–219., मानसखण्डम् : 10., नौटियाल, राकेश मोहन. द्वारा उद्धृत्, पूर्वोक्त, पृ0 77.
9. रतूड़ी, हरिकृष्ण., गढ़वाल का इतिहास, सम्पादक कठोच, यशवन्त सिंह., भागीरथी प्रकाशन, टिहरी गढ़वाल, प्रथम संस्करण–2000, पृ. 32–33.

10. नैथानी, शिवप्रसाद., ब्रह्मपुर और सातवीं सदी का उत्तराखण्ड, पवेत्री प्रकाशन, 2005, पृ. 252.
11. मेगस्थने, आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑव इण्डिया, भाग–1, पृ. 60, पाण्डेय, राजबली. द्वारा उद्धृत, हिन्दू संस्कार, चौखम्बा विद्याभवन, पुर्नमुद्रित संस्करण, 2006, पृ0 212.
12. डबराल, शिवप्रसाद., कुलिन्द जनपद उत्तरांचल– हिमांचल का प्राचीन इतिहास, भाग–2, बुद्ध निवार्ण से चौथी शदी तक, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, मकर संक्रान्ति 2049, पृ0 204.
13. शर्मा, डी.डी., हिमालय के खश–एक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण, पहाड़, हल्द्वानी, 2006, 50–51.
14. रतूड़ी, हरिकृष्ण., वही, पृ0 93.
15. पन्नालाल, कुमाऊं में प्रथागत कानून, अनुवाद : थपलियाल, प्रकाश., उत्तराखण्ड प्रकाशन हिमालय संचेतना संस्थान आदिबदरी, 2008, पृ0 9.
16. जोशी, गोपा., भारत में स्त्री असमानता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली वि0वि0, प्रथम प्रकाशन –2006, द्वितीय संस्करण– 2015, पृ0 5.
17. डबराल, शिवप्रसाद., उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग–8, दोगड्डा, पृ0 357.
18. शर्मा, डी.डी., हिमालयी संस्कृति के मूलाधार (हिमालय की पुरातन जनजातियों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विवेचन), इरा प्रकाशन, हिमाचल प्रदेश, पृ0 48.
19. रतूड़ी, हरिकृष्ण., वही, पृ. 97.
20. ड़बराल, शिवप्रसाद., *उत्तराखण्ड़ का इतिहास,* भाग–7, पृ. 370.
21. प्रकाश, ओम., *प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास,* वाइली ईस्टर्न लिमिटेड, दिल्ली, 1975, पृ. 148.
22. मिश्रा, जयशंकर., *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* विहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974, पृ. 327.
23. जब उच्चवर्ण का पुरूष अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह करता है तो वह अनुलोम विवाह कहलाता है, जैसे ब्राह्मण पति का क्षत्रिय आदि निम्न वर्णों की कन्या से विवाह।
24. जब उच्चवर्ण की स्त्री से निम्न वर्ण का पुरूष विवाह करे, जैसे– ब्राह्मण कन्या का क्षत्रिय पुरूष से विवाह।
25. शर्मा, डी.डी., वही, पृ. 200.
26. मनु : 3.12, पाण्डेय, राजबली., *हिन्दू संस्कार,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006, पृ. 230.
27. याज्ञवल्क्य : 1.55, *'एतैरेय गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियों वरः',* उद्धृत सिंहल, लता., वही, पृ. 106.
28. वेदव्यास : 2.12, उद्धृत सिंहल, लता., वही, पृ. 108.
29. पाण्डेय, राजबली., वही, पृ. 228.
30. सरोला जाति के विस्तार और जातीय मिश्रण के परिणामस्वरूप ही सरोला सभा की स्थापना हुई। ब्रिटिश कालीन गढ़वाली समाज में जाति स्तर की उच्चता प्राप्त करने को बल मिला और सभी वर्गो के लोग स्वयं को उच्च जातियों के साथ जोड़ने लगे। जो वर्ग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होता गया, राजाश्रय पाने में सफल हो गया तथा सरोला वर्ग के लोगो के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करने में सफल रहा, उसका समावेश भी सरोला वर्ग में होता रहा, जिससे सरोला जाति के समक्ष अपनी जाति शुद्धता बनाये रखने का प्रश्न खड़ा हो गया। अतः अपनी जाति शुद्धता बनाये रखने के उद्देश्य से सरोला वर्गीय ब्राह्मणों द्वारा सरोला सभा की स्थापना कर सरोला–नौटियालों को छः शाखाओं (ढगाण, पल्याण, मंजखोला, गजल्टी, बौसोली और चांदपुरी) में विभक्त कर दिया गया और उनमें परस्पर

विवाह की अनुमति दी गयी। और बदाणी, जोशी, मलगुडी, गजाल्डी, पल्याण, धम्माण, जसोला और चौंकियाल जातियों को सरोला जाति की सूची से हटा दिया।

31. शर्मा, डी.डी., *उत्तराखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास,* भाग–2, पृ. 146.
32. रतूड़ी, हरिकृष्ण., वही, पृ. 95–96.
33. रतूड़ी, हरिकृष्ण., पूर्वोक्त, पृ. 94.